Vol. 2, No. 4, (October 2013) P. 8-11
Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

मार्गी संगीत में स्थितिप्रज्ञता के लक्षण

दीपक त्रिपाठी
शोधार्थी
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
E-mail : deep.naadbramha333@gmail.com

"स्थितिप्रज्ञता" का अभिप्राय पूछते हुए अर्जुन ने गीता के दूसरे अध्याय के 54वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण से कहा :–

अर्जुन उवाच

स्थितिप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत् किमासीत ब्रजेत किम्।।2/54

अर्थात् अर्जुन ने कहा – हे केशव्! अध्यात्म में लीन चेतना वाले व्यक्ति (स्थितप्रज्ञ) के क्या लक्षण है? वह कैसे बोलता है? तथा उसकी भाषा क्या है? वह किस तरह बैठता और चलता है?

श्री भगवान उवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्यतदोच्यते।।2/55

श्री भगवान ने कहा – हे पार्थ! जब मनुष्य मनोधर्म से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियतृप्ति की समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और जब इस तरह से विशुद्ध हुआ उसका मन आत्मा में सन्तोष प्राप्त करता है तो वह विशुद्ध दिव्य चेतना को प्राप्त (स्थितप्रज्ञ) कहा जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों की प्रत्यक्षदर्शी धारा मार्गी संगीत में परिलक्षित होती है। वेदकाल से ही संगीत दो भागों में समान रूप से विकसित हुआ। मार्गी संगीत और देशी संगीत। संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के मतानुसार गाँधर्व और गान को ही क्रमशः मार्गी और देशी संगीत कहा गया है। मार्गी संगीत वह है जिसका प्रयोग ब्रम्हा के बाद भरत ने किया। जिन रीतियों को नियमों और उपनियमों में पगाया है, उनके स्वाद की अनुभूति कोई योगी या तपस्वी ही कर सकता है। तपस्या वह माध्यम है जो मानव को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बिन्दू की ओर उन्मुख करती है। संगीत को तपस्या ही कहा गया है। मार्ग या पथ, रीति एक ही शब्द के पर्याय है किन्तु संगीत के साथ इसका योग अनुपम प्रयोग का संयोग बनकर उपयोग हुआ।

मार्गी संगीत प्राचीन वैदिक काल का वह संगीत था जिसमें नियमबद्धता रही होगी अतः यह अनादि, अपौरूषेय, अत्यन्त पवित्र तथा अपरिवर्तनीय संगीत था। एतिह्य तथ्यों के अनुसार यही साम–संगीत, वैदिक संगीत था जिसे मार्गी संगीत कहा गया। "मार्ग" संस्कृत भाषा की धातु है जिसका अभिप्राय खोजना या अनुसंधान करना है। साधना, तपस्या और चिन्तन द्वारा जिसे मार्गित किया गया है या अनुसंधानित किया गया, उसे मार्गी संगीत का नाम दिया गया है। यह संगीत अपने आप दिव्य तथा कल्याणकारी था जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था। देवता पारितोषक संगीत था। अदृष्ट फलदायक था।

डॉ0 श्रीधर शरत्चन्द्र परान्जपे के अनुसार – मार्गी संगीत साम के समान शिष्ट एवं प्रतिष्ठित संगीत था। इसी कारण नियमों से बद्ध था, परिष्कृत था और संस्कारित था। मार्गी संगीत को उस काल का उच्च श्रेणीय संगीत माना गया है।

आचार्य ब्रहस्पति जी कहते हैं कि संगीत का उद्गम स्थान वेद हैं। जो संगीत वेदों में मार्गण अथवा अन्वेषण का परिणाम है, शाश्वत नियमों से बद्ध है, इसका प्रयोग सर्वत्र और सर्वदा एक जैसा है, इसमें परिवर्तन का अधिकार लोकरूचि को नहीं है, क्योंकि इसका लक्ष्य केवल मनोरंजन न होकर मोक्ष प्राप्ति है।

"मार्ग" शब्द पुल्लिंग है और उसकी उत्पत्ति "मार्ग" धातु में "घञ्" प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका अर्थ है– रास्ता या पथ। मार्ग संगीत को स्पष्ट समझने के लिए इसका संलग्नक देशी संगीत को भी जानना अति आवश्यक है।

नाट्यशास्त्र में सामगान से भिन्न संगीत के दो रूपों के लिए गांधर्व और गान शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा बृहद्देशी में मार्ग और देशी का । संगीत रत्नाकर में चारों शब्द हैं। अभिनव गुप्त ने टीकाग्रन्थ की मर्यादा में रहते हुए भी यत्र–तत्र "देशीमार्गादि" के रूप में मार्ग और देशी का उल्लेख किया है। उसने गांधर्व और गान की जो व्याख्या की है उसमें मतंग की मार्ग देशी की धारणा का प्रभाव दिखाई देता है। भरत, मतंग और अभिनव गुप्त के दृष्टिकोंणों का समन्वय करके संगीत रत्नाकर में मार्ग ओर देशी का स्वरूप व्याप्ति और भेद निश्चित किया गया है। मार्ग और देशी की चर्चा इस प्रकार की है। –

गीतं, वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीत मुच्यते।
मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।।
यो मार्गितो विरिच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।
देवस्य पुरतः शंभोनिर्यताभ्युदयप्रदः।।
देशे देशे जनानां यद्रुच्या ह्रदयरन्जकम्।
*गीतं च वादनं नृत्तं तद्देशीत्यभिधीयते।।(सं0र0,1/1/21ग–*24घ)

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य का समुच्चय संगीत है जो दो प्रकार का है– मार्गी और देशी। मार्ग उसे कहते हैं जिसे ब्रह्मादि ने खोजा, भरतादि ने शम्भु के सामने प्रयुक्त किया जो नियत् स्वरूपवाला तथा कल्याणप्रद है। जो गीत, वाद्य और नृत्य देशे देशे यानि विभिन्न लोगों की रूचि के अनुसार प्रयुक्त होकर ह्रदय का रंजन करने वाला होता है वह देशी है।[1]

जैसा कि ज्ञात है कि भरत पूर्ववर्ती काल में संगीत के गांधर्व व गान रूप का वर्णन प्राप्त होता है। जो मार्ग व देशी संगीत के समतुल्य माना गया है। गांधर्व का उल्लेख इस प्रकार मिलता है : –

यन्तु तन्त्रीकृतं प्रोक्तं नानातोद्य समाश्रयम्।
गान्धर्वमिति विज्ञेयं स्वरतालपदाश्रयम्।।(ना0शा0,अ0–28, श्लो0 08)

अर्थात् अनेक वाद्यों का आश्रयभूत जो तन्त्रीगत आतोद्य प्रकार है, वही स्वर, ताल तथा पदों का आश्रय लेने पर गांधर्व कहलाता है। यह गांधर्व देवताओं को अत्यन्त प्रिय और गांधर्वों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण यह गांधर्व कहलाता है। संगीत के स्थूल नियम वैदिक काल में ही बन चुके थे, किन्तु रामायण काल तक संगीत का एक विपुल शास्त्र बन चुका था जिसका सामान्य नाम था – गांधर्व । प्राचीन भरत और नारद आदि के मतों का अनुशीलन करने से ऐसा जान पड़ता है कि कण्ठ और वाद्य संगीत के शास्त्रीय रूप का विविध संयोग से प्रयोग गांधर्व संगीत कहलाता है। [2]

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार जो "गन्ध" अर्थात् विद्या को "अर्व" या प्राप्त करे वही गांधर्व कहलाता है। [3]

आचार्य नारद के अनुसार – जो अनादि परम्परा से प्राप्त गांधर्वों द्वारा प्रयुक्त तथा अपने नियत् रूप में कल्याणप्रद है, उसे गांधर्व कहा जाता है। [4]

दत्तिलम् के अनुसार – पदो में स्थित स्वरों का संघात जब ताल के द्वारा नियमित रूप में प्रयुक्त होता है तब उसको गांधर्व कहते है। [5]

अनादिसम्प्रदायं यद्गान्धर्वैः सम्प्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसो हेतु स्तद्गांधर्व प्रचक्षते।।

अर्थात् जिसकी परम्परा अनादि है, यानि किसने? कैसे? व कब? इसको उत्पन्न किया ऐसा नहीं कहा जा सकता, जिसका प्रयोग गांधर्व करते थे और जिससे आत्मिक उन्नति होती है ऐसा संगीत गांधर्व संगीत है। संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ गांधर्व संगीत को मार्ग संगीत बताते हैं।

स्वामी प्रज्ञानन्द के अनुसार – गांधर्व भारत के उत्तर– पश्चिम के दिव्य मानव थे। उनका गायन ही गांधर्व गान था और उनके गायन का आधार गांधार ग्राम था। गांधर्व संगीत के ही समान पवित्र व दैविक था इसलिए वह मार्ग माना गया। [6] क्योंकि आप्त पुरूषों ने आनादि काल से पारलौकिक और इहलौकिक दो तत्वों के समीकरण को मानव जीवन कहा है। दोनो तत्वों का समीकरण मानव के चिन्तन का नैसर्गिक आधार है। कलाएं इसी मननयुक्त रसमयी चिन्तन का प्रतिरूप हैं। भरतीय संगीत में प्रथम का सम्बोधन मार्ग संगीत है।[7] जो जीवन मूल्यो की भाषा को सहज परिभाषित कर आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

According to swami prajnanand : "The music was different in form's and presentation from the Gandharva Music. which was almost contemporary to vedic music. The vedic was known by the name of sama – singing or samgaan and Gandharva music was image and designed by the devine Gandharva's like narad, tumbaru, viswavasu and other."[8]

श्रीपादबन्दोपाध्याय के विचार से मार्ग संगीत वैदिक और पौराणिक समय का सामगान और भक्तिगान था। [9]

श्री लक्ष्मीकांत मुखर्जी के अनुसार – बौद्धिक संगीत के अन्त के साथ ही मंदिरों में सुबह–शाम की पूजा के लिए जो संगीत प्रचलित हुआ, वह मार्गी संगीत व शास्त्रीय संगीत कहलाया।[10]

ठाकुर जयदेव के अनुसार – चारों वेद में से खोज कर जिस संगीत का प्रयोग करते हैं उसे मार्गी संगीत कहते हैं। इसका निर्धारित पथ है। गांधर्व संगीत मार्ग का पर्याय है। प्राचीन समय का मार्ग संगीत अब उसी रूप में वर्तमान नहीं है किन्तु संगीत के मार्गी और देशी ये दोनों भेद सनातन ओर सार्वभौमिक हैं। केवल समय–समय के मार्ग संगीत के आदर्शों और लक्षणों में भेद होता रहता है।

संगीत, साधना के लिए प्रयुक्त होने वाली आराधना है। इस सृष्टि में संगीतमयता लयबद्ध होकर अलौकिक संगीत के दिव्य प्रवाह की तरह सतत् संचरित है। इसे अनाहत या अनहद नाद के रूप में वर्णित करने का प्रयास भी किया जाता है। ओंकार की ध्वनि "प्रणव" भी इसी दिव्य संगीत को कहा गया है।

इसीलिए शास्त्रों में स्थान–स्थान पर प्रणव की महत्ता गायी गई है। गीता में "प्रणवः सर्ववेदेषु" (गीता 7/8) तथा महाभरत में भी "ओंकारः सर्ववेदानाम्" (अश्वमेघ पर्व 44/6) कहा गया है।

किसी भी रीति के गन्तब्य पर पहुँचने के लिए माध्यम कोई न कोई पथ, मार्ग या प्रणाली होते हैं। मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य उस परमसत्ता के चरम बिन्दू की प्रेरणा है। जिसकी अनूभूति मात्र से ही प्राणी उस ऊर्जा संचार में प्रवाहित होकर शाश्वत् गन्तव्य पर पहुँचकर ब्रह्मलीन हो जाता है। जहाँ उसकी आत्मा का उत्कर्ष जीवन के निष्कर्ष का साक्षात्कार करता है। अर्थात् मनुष्य की कोमल भावनाओं को झंकृत, तरंगित करने पर उसमें देवत्व का उदय होता है। वह सूक्ष्म सत्ता के भाव संस्पर्श की अनुभूति की स्थिति पाता है। इन्ही दिव्य लक्षणों की प्रदीप्त स्थिति "स्थितिप्रज्ञता" की लक्षणा कहलाती है, जो हमारे प्राचीन संगीत जिसे गांधर्व या मार्गी संगीत कहते हैं, में नीर–क्षीर की भाँति प्राप्त होती हैं।

संदर्भ–

1 – डॉ0 सुभद्रा चौधरी : भारतीय संगीत में निबद्ध पृ0 02
2 – अशेक कुमार यमन : संगीत रत्नावली पृ0 178
3 – वही0 पृ0 179
4 – वही0 पृ0 179
5 – वही0 पृ0 179
6 – Swami Prajnanand : A Historical study of Indian music p.56-57.
7 – सुभाष रानी चौधरी : संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त पृ0 150
8 – Swami Prajnanand : A Historical study of Indian music p.32
9 – Shripadbandopadhyay : The evolution of songs and lives of great musicians p. 10-11
10 – Laxmikant Mukherjee :Classical music and raag sangeet, lakshya sangeet sep. 1958 p 23

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1 – "यमन", अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, प्रकाशक, आभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 2008
2 – डॉ0 चौधरी, सुभद्रा, भारतीय संगीत में "निबद्ध", प्रकाशक, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2004
3 – आचार्य ब्रहस्पति, के0सीडी0, संगीत चिन्तामणि, प्रकाशक, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0), संशोधित सं0 1976
4 – चौधरी, सुभाष रानी, संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, प्रकाशक, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली सं0 2002

❖